National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 1; Issue 2; May 2016; Page No. 27-29

अध्यात्म में ब्रह्म का स्वरूप

[1] डॉ0 राजकुमार, [2] डॉ0 नागेन्द्र नागर

[1] शोध–छात्र (डी0लिट0), संस्कृत विभाग, बी0एस0ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।
[2] एसोसिएट प्राफेसर, संस्कृत विभाग, बी0एस0ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

सार
ब्रह्म जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। यह अध्यात्मवादियों (उपनिषद् कालीन तत्त्व वेत्ताओं) का सर्वाधिक विचारणीय विषय रहा है, इसकी अखिल ब्रह्माण्ड नियामक सर्वोच्च सत्ता के रूप में मान्यता अनन्त काल से अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। यह समस्त सृष्टि के कण–कण में समाया हुआ है–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।यह समस्त अज्ञानों को प्रकाशित करने से सर्वज्ञ, अपनी माया शक्ति से सबका नियन्त्रण करने से सर्वनियन्ता, सर्व कर्म फलदाता होने के कारण सर्वेश्वर, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म, सच्चिदानन्दं ब्रह्म इत्यादि श्रुतिवाक्य भी ब्रह्म के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं।यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति अर्थात् इसके जानने से सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। यह ज्ञान का अथाह स्रोत है जैसा कि तर्कभाषा में कहा गया है–ज्ञानाधिकरणमात्मा। इस शोध पत्र के माध्यम से पाठकों को ब्रह्म के स्वरूप के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा।

प्रस्तावना
ब्रह्म शब्द बृह् (बढ़ना) धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है–बढ़ना या आगे की ओर प्रस्फुटित होना, आगे निकल जाना, अतिशयन, सत्य, नित्य ऋचा आदि। यह अध्यात्मवादी तत्त्वविदों का सर्वाधिक विचारणीय विषय रहा है। अखिल ब्रह्माण्ड–नियामक सर्वोच्च सत्ता के रूप में इसकी मान्यता अक्षुण्ण रूप में अनन्त कालसे चली आ रही है। उपनिषद् साहित्य में इसे ब्रह्म, पुरुष, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, इत्यादि कई नामों से इंगित किया गया है। परन्तु इन सब में 'ब्रह्म' शब्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।
'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में देखने को मिलता है–'ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो'[1] परन्तु यह उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्मार्थक नहीं है। अपितु स्तोतार्थक है। इस दृष्टि से अथर्ववेद सर्वाधिक महत्त्व रखता है। औपनिषद् ब्रह्म का प्रतिपादित स्वरूप एवं अर्थ अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में बहुशः प्राप्त होता है।[2] ब्रह्मचारी सूक्त में कहा गया है कि ब्रह्म में ही सभी देवों का अंश समाया हुआ है।[3] आचार्य शंकर ने ब्रह्म के विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् के अपने भाष्य में कहा है –बृहत्तमत्वाद् ब्रह्मः[4] अर्थात् बृहत्तम होने के कारण ही इसे ब्रह्म कहा जाता है। आचार्य शंकर के भाष्य विष्णुसहस्रनाम में भी 'ब्रह्म' को 'बड़ा' बढ़ने वाला तथा सत्य आदि लक्षणों से युक्त माना गया है– ''बृहत्वाद बृहणत्वाच्च सत्यलक्षणं ब्रह्म''[5]
इस महावाक्य का यही सन्देश है। ईशावास्योपनिषद् 'ईशावास्यमिदं सर्वम्[6] इस वाक्य के द्वारा ब्रह्म की संवर्धनशीलता की ओर संकेत करती है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त[7] का प्रतिपाद्य विषय भी यही महत्तम ब्रह्म ही है। ब्रह्म के विषय में केनोपनिषद् कहती है– ''न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, नो मनो विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।''[8] अर्थात् उस ब्रह्म के समक्ष नेत्रेन्द्रिय नहीं जाती, वाणी नहीं जाती तथा वह विदित से अन्य एवं अविदित से भी परे है। वह वाणी से प्रकाशित नहीं होता; अपितु उससे वाणी प्रकाशित होती है। यद् ब्रह्मवाचा शब्देनानभ्युदितम् स्पर्शान्तः स्थोष्मभिर्व्यज्यमाना बह्वी नाना रूपा भवति।[9] अर्थात् अकार ही सम्पूर्ण वाक् है, और यह वाक् ही अपने स्पर्श (क से म तक के सभी वर्ण), अन्तःस्थ (य, र, ल, व) और ऊष्म (श, ष, स, ह) आदि भेदों से अभिव्यक्त होकर अनेक रूपों वाली हो जाती है। इस प्रकार मित (जिनके पाद का अन्त नियत अक्षरों वाला है उन वाक्यों को मित अर्थात् ऋग्वेद कहते हैं), अमित (जिनके वाद का अन्त नियत अक्षरों वाला नहीं है उन वाक्यों को अमित अर्थात् यजुर्वेद कहते हैं), स्वर (गायन प्रधान सामवेद स्वर कहलाता है), तथा सत्य और मिथ्या– ये ब्रह्म के विकार हैं और पदरूप से परिच्छिन्न एवं वागिद्रियरूप गुण वाली वाणी से जो अनभ्यूदित (अप्रकाशित) कहा गया है और जिससे वाणी अभ्यूदित होती है ऐसा कहकर उसे वाणी के प्रकाश का हेतु बताया गया है अर्थात् वह वाणी की भी वाणी है।

> यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्, यच्चक्षुष न पश्यति येन चक्षूँन्षि पश्यति, यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्, यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।[10]

अर्थात् इस (ब्रह्म) का मन से मनन नहीं किया जाता बल्कि मन इससे मनन करता है, इसे नेत्र से कोई देख नहीं सकता अपितु इसकी सहायता से नेत्र अपने विषयों को देखते हैं, इसे कोई कानों से कोई सुन नहीं सकता बल्कि इससे श्रोत्रेन्द्रिय सुनी जाती हैं। यह नासिकारन्ध्रस्थ प्राण के द्वारा विषय नहीं किया जाता बल्कि इससे प्राण अपने विषयों की तरफ जाता है।यह अजन्मा,निश्चल तथा सभी तत्त्वों से विशुद्ध है इसको जानने से ही समसत प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।[11] ब्रह्म के विषय में कठोपनिषद् कहती है–

> न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यतिकश्चनैनम्।
> हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।[12]

इस ब्रह्म का स्वरूप दृष्टि के सामने नही ठहरता अर्थात् इसे नेत्र देख नहीं सकते। यह (ब्रह्म) तो मन का नियमन करने वाली हृदयस्थिता बुद्धि के सम्यग्दर्शन से जाना जा सकता है।

> अणोरणीयान्महतो महीयानात्मस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्[13]

यह अणु से भी अणु और महान से भी महान ब्रह्म जीव की हृदयरूपी गुहा में स्थित है।
प्रश्नोपनिषद में इसे द्रष्टा, स्पृष्टा, श्रोता रसयिता मन्ता (मनन करने वाला) बोद्धा कर्ता और विज्ञानात्मा आदि कहा गया है।[14]
'अलब्धावरणाः सर्वे धर्माः प्रकृतिनिर्मिता'' अर्थात् आत्मा आवरण शून्य स्वभाव से ही निर्मल तथा शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है।[15] तैत्तिरीयोपनिषद् में आत्मा को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पाँच कोशों से आवृत्त माना गया है।[16] 'अंगुष्ठ मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।[17] अर्थात् यह

अंगूठे के समान परिमाण वाला है तथा प्राणियों के हृदय में निवास करता है। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमदभगवद्गीता में अनेक श्लोकों में अर्जुन से कहा है कि परबह्म परमात्मा समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करता है।[18] भगवान शिव ने भी श्री शिवगीता में इस ब्रह्म का निवास हृदय बताया गया है–

नाभेरूर्ध्वमधः कण्ठादव्याप्य तिष्ठसि यः सदा।
य मध्येऽस्ति हृदयं सनालं पद्मकोशवत्।।[19]

यह नाभि से ऊपर और कण्ठ से नीचे आकाश के स्थान को व्याप्त करके सदा स्थित रहता है। इतने ही स्थान के बीच में हृदय है जिसका स्वरूप नाल सहित कमल कली के समान है। इसका परिणाम इतना सूक्ष्म होता है कि आँखों से देखा नहीं जा सकता यह बाल के अग्रभाग के दस हजारवें भाग से भी अतिसूक्ष्म है– बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेय स चानन्त्यायस्य च।[20]
यह शरीर की समस्त गति विधियों का संचालक केन्द्र है

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्सन ंलोकमिमंरविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।[21]

जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशित करता है। जिस प्रकार सूर्य स्वयं कोई कर्म नहीं करता बल्कि उसके प्रकाश, ताप आदि शक्तियों के कारण संसार में उसके सभी कर्म होते हैं अतः प्राणियों द्वारा किये गये कर्मो का भोक्ता प्राणी स्वयं होता है, सूर्य नहीं। इसी प्रकार चन्द्रमा की शक्ति से समुद्र में ज्वार भाटा आता है वह स्वयं लाता नहीं। उसी की शक्ति से कुमुदनी रात्रि में खिलती है, चुम्बक की शक्ति से ही लोहा खिंचता है वह अपनी इच्छा से नहीं खींचता इसी प्रकार आत्मा (ब्रह्म) की चेतनश्शक्ति से अज्ञानवश अहंकार पैदा होता है जिससे उसे 'जीव' कहते हैं। यही जीव कर्मों का कर्त्ता व भोक्ता बन जाता है। आत्मा केवल द्रष्टा व साक्षी मात्र है जो न स्वयं कर्म करता है, न कर्मफलों का भोक्ता ही होता है। वह निर्लेप है।[22] यह प्राणादि के सो जाने पर अपने इच्छित पदार्थों की रचना करता हुआ भी जागता रहता है ओर यही अमृत कहा जाता है।इसमें सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं; कोई भी इसका उल्लंघन नहीं कर सकता। जिस प्रकार सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप के अनुरूप हो गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा (ब्रह्म) उनके अनुरूप हो रहा है तथा उनसे बाहर भी है। जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा (ब्रह्म) उनके अनुरूप हो रहा है तथा उनसे बाहर भी है। जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी सूर्य नेत्रसम्बन्धी बाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा (ब्रह्म) संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, बल्कि उनसे बाहर रहता है। यह सबको अपने अधीन रखने वाला और सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा (ब्रह्म) अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है, इसे अपने स्व–स्वरूप में स्थित धीर (विवेकी) पुरुष ही देखते हैं।[23]

तदेजति तन्नेजति तददूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।[24]

यह (ब्रह्म) चलता है और नहीं भी चलता है, यह दूर है और समीप भी है, यह सबके अन्तर्गत है और यही सबके बाहर भी है। इस ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढ़का हुआ है– ''हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'' [25]
तैत्तिरीयोपनिषद् इसे सत्य, ज्ञान, तथा अनन्त कहती है– 'सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[26]
ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में इसे नित्य शुद्ध कहा गया है– 'ब्रह्मशब्दस्य हिव्युत्पाद्यमानस्यनित्यशुद्धत्वादयोऽर्थाःप्रतीयन्ते बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्'[27]
उपनिषदों में ब्रह्मस्वरूप बोधक प्रमुख रूप से तीन पद पाये जाते हैं। जिन्हें, सत् ज्ञान तथा आनन्द नाम से जाना जाता है। अन्य सभी का इन्हीं के अन्तर्गत समाहार हो जाता हैं इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1 सत्–स्वरूप ब्रह्म

इस ब्रह्म का सुस्पष्ट स्वरूप छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है।[28] तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म को असत् जानने वाला असत् तथा सत् जानने वाला सत् स्वरूप हो जाता है।[29] इस प्रकार यह सत् स्वरूप से प्रतिष्ठित है।[30]

2 ज्ञान स्वरूप ब्रह्म

बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म को विज्ञानमय, विज्ञानघन तथा प्रज्ञान घन बतलाया गया है।[31] इसी प्रकार तैतिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को विज्ञानमय बतलाया गया है।[32]

3 आनन्द स्वरूप ब्रह्म

आनन्द स्वरूप ब्रह्म का वर्णन करती हुई तैत्तिरीयोपनिषद् कहती है कि आनन्दस्वरूप ब्रह्म को जानने वाला विद्वान कभी भय को नहीं प्राप्त होता।[33] यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते[34] के निर्णयवाक्य के रूप में कहा गया है– ''आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यंभिसंविशन्ति।''[35] बृहदारण्यकोपनिषद् में भी ब्रह्म को परमानन्द स्वरूप बताया गया है।[36]
इस प्रकार उपनिषदों में वर्णित ब्रह्मतत्त्व सत् ज्ञान तथा आनन्दस्वरूप है। दूसरे शब्दों में इसी को सच्चिदानन्द भी कहा जाता है।
निर्गुण तथा सगुण के भेद से ब्रह्म को मुख्यतः दो रूपों में प्रतिपादित किया गया है। निर्गुण ब्रह्म के लिये नपुंसकलिंग तथा सगुण ब्रह्म के लिये पुल्लिंग का प्रयोग किया गया है। इसीलिये परब्रह्म ''तत्'' पद के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। ''सः'' पद के द्वारा नहीं लेकिन इन दोनों में केवल औपाधिक भेद है, ऐकान्तिक भेद नहीं है।
निर्गुण ब्रह्म को ही परब्रह्म या निष्कल ब्रह्म कहा गया है; जबकि 'सगुणब्रह्म' अपरब्रह्म या ईश्वर के नाम से जाना जाता है। अर्थात् निष्कल ब्रह्म को निरूपाधिक तथ सकल ब्रह्म को सोपाधिक माना गया है। कहने का आशय हैकि जिा स्वरूप का निर्धारण ब्रह्म को कारण– कार्य आदि से रहित मानकर किया जाता है, ब्रह्म का वही कला रहित स्वरूप निष्कलब्रह्म कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जिस स्वरूप का निर्धारण 'ब्रह्म' को कारण–कार्य आदि से युक्त मानकर किया जाता है,ब्रह्म का यही कलायुक्त स्वरूप सगुण ब्रह्म कहलाता है।
यह 'ब्रह्म' जगत् का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी।जिस प्रकार मकड़ी अपने चेतन्यांश से जाले की उत्पत्तिके प्रति निमित्त कारण है तथा
शरीर से उस जाले के प्रति उपादान कारण है; उसी प्रकार ईश्वर भी शुद्ध–चैतन्य की प्रधनता से जगत् का निमित्तकारण है तथा अपनी उपाधि 'माया' के प्राधान्य से इस जगत् का उपादान कारण है–
शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं, स्वोपाधि प्रधनतया उपादानं च भवति, यथा लूता तन्तुकार्यं प्रति स्वप्रधानतया निमित्तं स्वशरीरप्रधानतया उपादानञ्च भवति।[37]
ब्रह्म के विषय में बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि, वह पर ब्रह्म पूर्ण और जगत् भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से ही यह पूर्ण

उत्पन्न होता है। इस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष बचता है– ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्च्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।[38] इसे ''नेति नेति'' पद के द्वारा भी अभिलक्षित किया गया है।[39] नेति से बढ़कर कोई अन्य इस ब्रह्म का लक्षण नहीं है।[40] ब्रह्म विषयक उपनिषदों का मौलिक सिद्धान्त है कि यह सम्पूर्ण विश्व ही ब्रह्म है– यहाँ तक कि मैं भी ब्रह्म हूँ– अहं ब्रहमास्मि।[41] और तुम भी ब्रह्म हो–तत्त्वमसि।[42]

यह 'ब्रह्म' समस्त अज्ञानों को प्रकाशित करने से 'सर्वज्ञ', अपनी माया शक्ति से सबका नियन्त्रण करने से सर्वनियन्ता, सर्वकर्मफल प्रदाता होने के कारण 'सर्वेश्वर' तथा विवर्तरूप में अध्यसित इस संसार का अधिष्ठान होने से इस जगत् का कारण भी है। सत्य, ज्ञान, आनन्द इत्यादि इस ब्रह्म का स्वरूप है और यही अध्यात्म (उपनिषदों) का सारभूत तत्त्व है। इस ब्रह्म को जानने वाला भी ब्रह्म ही हो जाता है–ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।

निष्कर्षतः

अध्यात्म में ब्रह्म का स्वरूप के सन्दर्भ में दिये गये तथ्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वनियन्ता, सर्वप्रकाशक, इन्द्रियों से परे तथा समस्त जगत् का निमित्त व उपादान कारण है और यह समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करता है। यह अन्तः स्थ चक्षुओं से अर्थात् स्वयं प्रकाश ज्ञान से जाना जाता है। इसके दर्शन मात्र से समस्त प्रकार के बन्धन नष्ट हो जाते हैं और व्यक्ति आवागमन रूपी चक्र से मुक्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 3/34/1,1/82/6
2. अथर्ववेद, 10/2,7,8 और 11/8
3. अथर्ववेद 11/7/24
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/1/1
5. विष्णुसहस्रनाम (शांकर भाष्य), 84
6. ईशावास्योपनिषद्, 1
7. ऋग्वेद, 10/90
8. केनोपनिषद्, 1/3
9. ऐतरेय आरण्यक, 2/3/7/13
10. केनोपनिषद्,1/5–8
11. श्वेताश्वत्तरोपनिषद्, 4/10
12. कठोपनिषद्,2/3/9
13. कठोपनिषद्, 1/2/20
14. प्रश्नोपनिषद्, 4/9
15. माण्डूक्योपनिषद्/अलातशान्ति/98
16. तैत्तिरोयोपनिषद्/ब्रह्मानन्दबल्ली/2
17. कठोपनिषद्, 2/3/17
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 10/24
19. श्री शिवगीता, 10/24
20. श्री शिवगीता, 10/26
21. श्रीमद्भगवदगीता, 14/33
22. सर्ववेदान्त सार संग्रह, 425, 426
23. कठोपनिषद्, 2/1/12
24. ईशावास्योपनिषद्, 5
25. ईशावास्योपनिषद्, 15
26. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/1/1
27. ब्रह्मसूत्र (शांकर भाष्य), 1/1/1/1
28. छान्दोग्योपनिषद्, 6/2/1
29. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/6/1
30. मैत्रायणोपुनिषद्, 4/4
31. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/9/28, 2/4/112 – 4/5/13
32. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/4/1
33. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1
34. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
35. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/3/32
36. बृहदारण्यकोपनिषद्, 5/1/1
37. वेदान्तसार,19
38. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/9/36
39. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/9/6
40. छन्दोग्योपनिषद्,3/14/1
41. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/4/10
42. छान्दोग्योपनिषद्, 6/16/3